ऊर्जा नीति का वैज्ञानिक आधार क्या हो?

भारत डोगरा

ऊर्जा नीति सम्बंधी विचारों में हाल के समय में बहुत उतार-चढ़ाव देखे गए हैं। आज से लगभग पंद्रह वर्ष पहले तक जो स्थिति थी, उसमें परमाणु ऊर्जा और बड़े बांधों के खतरों की ओर बहुत ध्यान दिलाया गया था। इस बारे में बहुत से प्रमाणिक तथ्य एकत्र किए गए थे व अध्ययन किए गए थे।

इसका एक महत्त्वपूर्ण असर यह देखा गया कि अनेक विकसित देशों ने अपने ऊर्जा कार्यक्रम में परमाणु ऊर्जा का महत्त्व कम कर दिया। जर्मनी जैसे महत्त्वपूर्ण देश ने यहां तक कहा कि वे निकट भविष्य में परमाणु ऊर्जा पर अपनी निर्भरता से पूरी तरह मुक्त हो जाएंगे। परमाणु संयंत्रों के लिए कंपनियों को नए आर्डर मिलने बहुत कम हो गए हैं। इस कारण से कुछ बड़ी कंपनियों में तो अपने को किसी तरह बचाए रखने का संकट उत्पन्न हो गया है।

इसी तरह बड़े बांधों के विरुद्ध चले अभियान के कारण कुछ बहुचर्चित परियोजनाओं के लिए अंतर्राष्ट्रीय संस्थानों से सहायता मिलनी बंद हुई। ऐसी कुछ परियोजनाओं पर पुनर्विचार की मांग को स्वीकार किया गया है। संयुक्त राज्य अमरीका जैसे कुछ विकसित देशों में पहले से बनाए गए कुछ बांधों को हटाने की मांग ने ज़ोर पकड़ा व ऐसे कई प्रयास आरंभ भी हुए। नदियों को बगैर किसी बड़ी बाधा के बहने देने की जो मांग पहले अवैज्ञानिक मानी जाती थी, नदियों के पर्यावरण की बढ़ती समझ के साथ इस मांग को वैज्ञानिक मान्यता प्राप्त होने लगी है।

बहस यहां तक पंहुचने के बाद उसने एक बड़ी उलटबाज़ी खाई है। यह तब हुआ जब जलवायु परिवर्तन का संकट सबसे बड़े पर्यावरणीय संकट के रूप में सामने आया। इस संदर्भ में यह कहा जाने लगा कि अब किसी भी अन्य पर्यावरणीय समस्या की अपेक्षा ग्रीनहाउस गैसों के उत्सर्जन को कम करना ज़्यादा ज़रूरी है। अतः कोयले, तेल व गैस से चलने वाले ताप बिजलीघरों में बिजली का उत्पादन कम करना सबसे ज़रूरी है। इस नई प्राथमिकता को ध्यान में रखते हुए बड़े बांधों व परमाणु बिजलीघरों को नई मान्यता मिलने लगी। सबसे बड़ा आश्चर्य तो लोगों को तब हुआ जब पर्यावरण रक्षा अभियानों से जुड़े कुछ व्यक्तियों ने भी परमाणु ऊर्जा की वकालत शुरू कर दी।

दूसरी ओर, अधिकांश अन्य पर्यावरणविदों ने कहा कि परमाणु संयंत्रों व बड़े बांधों के खतरों या दुष्परिणामों के बारे में जो तथ्य एकत्र किए गए थे वे आज भी अपनी जगह पर कायम है। बड़े बांधों के जलाशयों में वनस्पति गलने-सड़ने से जो मीथेन गैस उत्पन्न होती है, उससे भी जलवायु परिवर्तन का खतरा बढ़ता है। परमाणु ऊर्जा प्राप्त करने के लिए खनन से लेकर अवशिष्ट पदार्थ खपाने तक की तमाम प्रक्रियाएं गंभीर खतरों से जुड़ी हैं। इनमें से अनेक प्रक्रियाओं का जलवायु परिवर्तन पर प्रतिकूल असर पड़ता है, हालांकि बिजली उत्पादन के दौरान जीवाश्म ईंधन न जलाने का कुछ लाभ ज़रूर मिलता है।

यह पूरी बहस तथ्यपरक इस कारण नहीं रह पाई क्योंकि परमाणु संयंत्रों व बड़े बांधों से जुड़े आर्थिक हितों की लॉबी ने जलवायु परिवर्तन के दौर में अपनी बढ़ती प्रासंगिकता का बढ़ा-चढ़ाकर प्रचार किया। दरअसल, सब तरह के खतरों को देखते हुए ज़्यादा ज़रूरी यह हो गया है कि ऊर्जा संरक्षण व ऊर्जा के वैकल्पिक व अक्षय स्रोतों की ओर ध्यान दिया जाए।

यह सच है कि हाल के वर्षों में अक्षय ऊर्जा स्रोतों (जैसे सौर, पवन, बायो गैस आदि) की ओर पहले की अपेक्षा कहीं अधिक ध्यान दिया गया है, फिर भी जीवाश्म ईंधन (कोयले व तेल) पर जितना खर्च होता है उसके मुकाबले में यह कहीं नहीं ठहरता है। यदि निजी व सार्वजनिक खर्च को मिलाकर देखा जाए तो भविष्य की ऊर्जा ज़रूरतों के इंतज़ाम में जितना खर्च हो रहा है, उसमें जीवाश्म ईंधन के नए भंडार खोजने पर व पाइप लाइन बनाने आदि पर ही ज़्यादा खर्च हो रहा है जबकि अक्षय ऊर्जा की नई व्यवस्था करने पर जो खर्च हो रहा है वह इसकी तुलना में बहुत कम है।

अतः अक्षय ऊर्जा की बेहतर से बेहतर संभावनाओं को प्राप्त करने के लिए अधिक संसाधन उपलब्ध करवाना बहुत ज़रूरी है पर इसका अर्थ यह नहीं है कि इन परियोजनाओं को भी विशाल बनाया जाए। सौर व पवन ऊर्जा परियोजनाओं को भी बहुत विशाल बनाया जाएगा, तो इनसे कई तरह की पर्यावरणीय व सामाजिक समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। अतः ज़रूरत इन अक्षय ऊर्जा स्रोतों के व्यापक स्तर के विकेंद्रित उपयोग की है, न कि इनकी विशाल परियोजना बनाने की।

इस तरह के वैकल्पिक विकास का एक उदाहरण यह हो सकता है कि किसी भी पंचायत या गांव का ऊर्जा नियोजन इस आधार पर किया जाए कि वहां जो भी स्थानीय ऊर्जा प्राप्त करने की संभावनाएं हैं, उनका उपयोग पूरा किया जाए। इस तरह एक गांव या पंचायत की ऊर्जा आवश्यकताएं काफी हद तक सौर ऊर्जा, पवन ऊर्जा, या बहुत छोटे स्तर के पनबिजली उत्पादन, बायो गैस आदि से हो सकती है। इस तरह ट्रांसमिशन में होने वाला बहुत-सा खर्च भी बचेगा। गांववासियों को गांव में ही रोज़गार उपलब्ध होगा। स्थितियां अनुकूल रहीं तो पंचायत को अतिरिक्त ऊर्जा की बिक्री से कुछ आय भी प्राप्त हो सकती है।

चूंकि इस तरह की विकेंद्रित ऊर्जा का रास्ता अपेक्षाकृत नया है, अतः इसमें आरंभ में कई कठिनाइयां आ सकती हैं और सरकार को आरंभ में ज़्यादा खर्च भी करना पड़ सकता है, पर यदि कई स्थानों पर यह मॉडल सफल रहे, तो अपेक्षाकृत कम खर्च पर इसकी प्रगति काफी तेज़ी से हो सकती है।

पर्यावरण की रक्षा की दृष्टि से अक्षय ऊर्जा स्रोतों को बढ़ाना ज़रूरी तो है पर यह पर्याप्त नहीं है। यदि उपभोगवादी जीवन शैली के प्रसार के कारण व्यापारिक ऊर्जा की मांग बहुत तेज़ी से बढ़ती रही तो इस बढ़ती मांग की आपूर्ति के लिए पर्यावरण पर बोझ असहनीय हद तक बढ़ सकता है और बड़े खतरों की संभावना भी बढ़ जाएगी। ऊर्जा संरक्षण से यह संभावना कम की जा सकती है। बिजली व ईंधन का अपव्यय रोका जा सकता है। भवन बेहतर बनाए जा सकते हैं ताकि बिजली की ज़रूरत कम पड़े। उपकरणों व तकनीकों में सुधार हो सकता है ताकि वे कम ऊर्जा में बेहतर काम कर सकें। ये सारी संभावनाएं मौजूद हैं पर इनकी कुल उपलब्धि इतनी नहीं है कि वे उपभोगवादी जीवन शैली के तेज़ प्रसार के लिए आवश्यक ऊर्जा को सीमित रख सकें। अतः ऊर्जा संरक्षण व अक्षय ऊर्जा अपनाने के साथ उपभोगवादी जीवन शैली व सोच को नियंत्रित करना भी ज़रूरी है। ***(स्रोत फीचर्स)***

अगले अंक में

स्रोत अक्टूबर 2011
अंक 273

- **भारत में कार पार्किंग की बढ़ती समस्या**
- **गंभीर हो रही है जलवायु परिवर्तन की स्थिति**

- **फफूंद विषः एक गंभीर समस्या**
- **भारत में दवा परीक्षण की प्रक्रिया में हो रही मौतें**
- **नैनोटेक्नॉलॉजी के नए आयाम**